नास्तिक भी आस्तिक

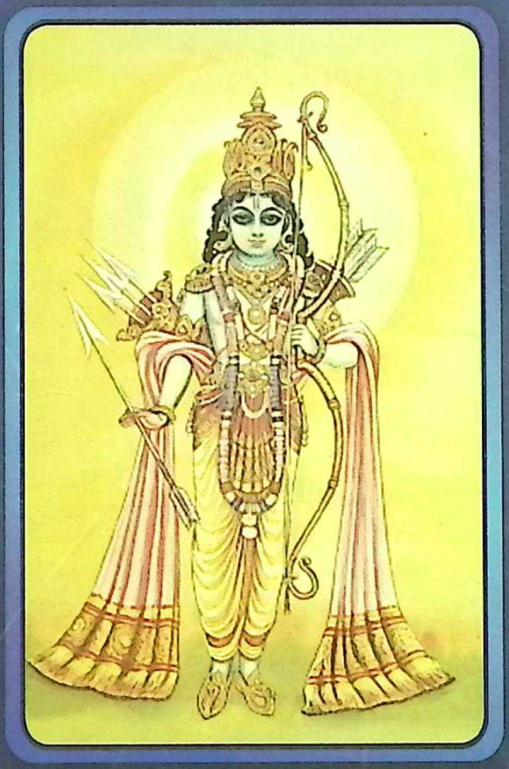

रचयिता
सर्वभूतहृदय धर्मसम्राट् श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज
(श्रीहरिहरानन्दसरस्वती महाभाग)

नास्तिक भी आस्तिक

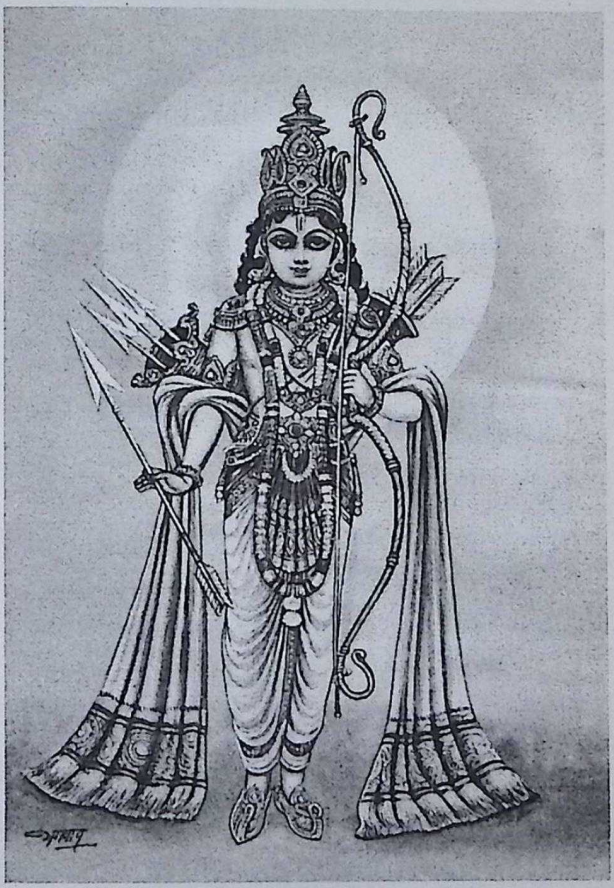

रचयिता
सर्वभूतहृदय धर्मसम्राट् श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज
(श्रीहरिहरानन्दसरस्वती महाभाग)

''स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान''-श्रीगोवर्द्धनमठ-पुरीपीठ - पुरीका
१२८ वाँ पुष्प
नास्तिक भी आस्तिक

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण वि. स. २०७३, सन् २०१६

१००० प्रतियाँ

सहयोगराशि
५०. ०० (पचास रुपये)

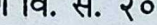

स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान
श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य - गोवर्द्धनमठ - पुरीपीठ
पुरी १ (ओडिशा), ७५२००१
भारत

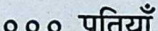

नास्तिक भी आस्तिक

आलोक श्रीकरपात्रमहाभाग

पूज्यपाद स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज

(श्रीहरिहरानन्दसरस्वतीमहाभाग)

विक्रमसम्वत् २००६

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

दिग्दर्शन

प्रिय पाठकवृन्द, सस्नेह स्मरण तथा अभिनन्दन।

विदित हो कि "**धर्मसङ्घ - शिक्षामण्डल - काशी**" के द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक '**सिद्धान्त**' में पूज्यपाद श्रीहरिहरानन्दसरस्वती श्रीकरपात्रमहाभागके धर्म, अध्यात्म और राष्ट्रसे सम्बद्ध निबन्ध प्रकाशित होते थे। विक्रमसम्वत् २००६में उनमेंसे सत्ताईस निबन्धोंको सङ्कलितकर "**सङ्घर्ष और शान्ति**" नामक पुस्तकको प्रकाशित किया गया। ग्रन्थका "**नास्तिक भी आस्तिक**" नामक दूसरा निबन्ध वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें देश - काल - परिस्थितिकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण है। अत एव श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती महाभागने "**सङ्घर्ष और शान्ति**" नामक ग्रन्थके अन्य निबन्धोंमें और श्रीकरपात्रमहाभागके अन्य ग्रन्थोंमें इस विषयसे सम्बद्ध अतिरिक्त सामग्रीका सङ्कलनकर ; तद्वत् इस विषयपर विविध प्रवचनोंके माध्यमसे अभिव्यक्त पूज्यपाद धर्मसम्राट्

के भावोंको मनोयोगपूर्वक हृदयङ्गमकर उनकी आराधना समझकर उक्त निबन्धको अपेक्षित प्रमाणोंके सहित विस्तृतकर इसे "स्वस्तिप्रकाशन संस्थान" – श्रीगोवर्द्धनमठ – पुरीपीठकी ओरसे पृथक् पुस्तिकके रूपमें प्रकाशित करनेका निर्णय लिया।

"**नास्तिक भी आस्तिक**" नामक यह ग्रन्थ स्वस्तिप्रकाशन संस्थान – श्रीगोवर्द्धनमठ – पुरीपीठका १२८वाँ पुष्प है। इसमें यह सिद्ध किया गया है कि अनीश्वरवादी नास्तिककी भी वाञ्छाका वास्तव विषय वेद – वेदान्तसम्मत अनन्त सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर ही है। कारण यह है कि प्रत्येक प्राणी मृत्युविहीन अमृतस्वरूप सत् , जडता – अज्ञताविहीन अखण्ड विज्ञानस्वरूप चित् , दैहिक – दैविक – भौतिक तापविहीन अलुप्त आनन्द ; तद्वत् परतन्त्रताविहीन परम स्वतन्त्र तथा प्रभुतासम्पन्न सर्वनियामक होना चाहता है। जिस प्रकार प्यासके विषय पानीका, भूखके विषय भोजनका, श्रोत्रके विषय शब्दका, त्वक् के विषय स्पर्शका, नेत्रके विषय रूपका, रसनेन्द्रियके विषय रसका तथा नासिकाके विषय गन्धका अस्तित्व अवश्य है; उसी प्रकार जीवकी चाहके विषय सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरका अस्तित्व अवश्य है। वह शरीरादिके सदृश अयोगास्पद, संयोगास्पद और वियोगास्पद भी नहीं है ; अपितु जल या जलदेवकी चाहके विषय जलके सदृश स्वरूपभूत साक्षात् प्रत्यगात्मा – अन्तरात्मा ही है।

पुष्प और फलादि पार्थिव पदार्थोंके आकर्षणका विषय अंशी पृथ्वी है, जलप्रपातोंके आकर्षणका विषय अंशी सागर है, वह्निज्वालाके आकर्षणका विषय अंशी सूर्य है; तद्वत् जीवोंके

आकर्षणका विषय अंशीसदृश सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर है। प्रत्येक अंश स्वभावतः अपने अंशीकी ओर ही आकृष्ट होता है। अत एव जीवोंके आकर्षणका विषय सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर ही सिद्ध है।

''यदेव साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरः '' (बृहदारण्यकोपनिषत् ३.४.२) के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि ब्रह्म देशकृत, कालकृत तथा वस्तुकृत व्यवधानसे रहित है। वह अबाध्य और अपरोक्ष होनेके कारण सत् है, अवेद्य और अपरोक्ष होनेके कारण चित् है, परप्रेमास्पद अभोग्य और अपरोक्ष होनेके कारण आनन्द है। सर्वाधिष्ठान और अपरोक्ष होनेके कारण अनन्त है। अनित्य (असत्), अचित् और दुःखसे सर्वथा अतीत होनेके कारण स्वतन्त्र है। वह रज्जुसर्पका रज्जुतुल्य असच्चिदानन्दरूप अनात्मप्रपञ्चका अधिष्ठान होनेके कारण सर्वनियामक है। विशुद्ध सत्त्वके योगसे उसकी सर्वज्ञता तथा सर्वशक्तिमत्ता भी चरितार्थ है।

'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय' (बृहदारण्यकोपनिषत् १.३.२८) के अनुशीलनसे जीवकी चाहका विषय सच्चिदानन्द सिद्ध होता है; जो कि उसका वास्तव स्वरूप ही है। शीतोष्णादि द्वन्द्व, मृत्युभय, मोह और दुःखसे अतिक्रान्त सुषुप्ति तथा जडतासे अतिक्रान्त समाधिके अनुशीलनसे सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माकी सहिष्णुताका उदय सम्भव है।

जीवको मृत्युग्रस्त देहादिमें अहंता तथा ममताके कारण मृत्युभय प्राप्त है, स्वतः वह सत्स्वरूप मृत्युञ्जय ही है।

जीवको अचित् देहादिमें अहंता तथा ममताके कारण विमूढता प्राप्त है; स्वतः वह चित्स्वरूप अखण्ड विज्ञान ही है।

जीवको दुःखप्रद देहादिमें तादात्म्यके कारण दुःख प्राप्त है; स्वतः वह आनन्दस्वरूप ही है।

'वस्तुशक्ति ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रखती'; अतः स्वरूपवैभवके बलपर जीवको कस्तूरीके मृगको सुगन्धकी चाहके सदृश अखण्ड सत्ता, चित्ता और प्रियताकी इच्छा प्राप्त है। **'अज्ञानशक्ति भटकाये बिना नहीं रहती'**, अतः कस्तूरीके मृगका गन्धशून्य तृणादिमें गन्धके आरोपके कारण भटकनेके सदृश अज्ञतावश अनात्मप्रपञ्च शरीरादिमें सत्ता, चित्ता और प्रियताके आरोपके कारण जीवको लोक – लोकान्तरोंमें भटकनेसे उपरामता प्राप्त नहीं होती। अतः अनात्मवस्तुओंसे अतीत और असङ्ग सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मात्मतत्त्वको प्रत्यगात्मस्वरूप जानकर मृत्यु, अज्ञता और दुःखका आत्यन्तिक उच्छेद सम्भव और कर्त्तव्य है।

भवदीय

श्रीमज्जगद्गुरु – शङ्कराचार्यके निज सचिव

स्वामी निर्विकल्पानन्दसरस्वती

मार्गशीर्षकृष्ण द्वितीया विक्रम – सम्वत् २०७२

२७.११.२०१५

बोकारो (झारखण्ड)

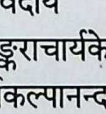

* श्रीहरिः *

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

नास्तिक भी आस्तिक

विषयानुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ
	प्रकाशनप्रशस्ति	०२
	आलोक श्रीकरपात्रमहाभाग	०३
	दिग्दर्शन	०४
	विषयानुक्रमणिका	०९
१.	**नास्तिक भी आस्तिक**	**११-४१**
(१)	आस्तिक – नास्तिक – मीमांसा	११
(२)	नास्तिककी आस्तिकता (नास्तिकोंमें भी मृत्यु, अज्ञता, दुःखसे अतिक्रान्त सत्, चित्, आनन्द , सर्वनियामक ,परम स्वतन्त्र परमात्मस्वरूप होनेकी भावना; अर्थात् आत्मानुरूप आत्मस्थितिकी कामना)	१८

(३)आत्मानुशीलनकी स्वस्थविधा ३१-३७
अनुरोध ३८
प्रार्थना ३९
जयघोष ४१
स्वस्तिप्रकाशन ४३- ४९

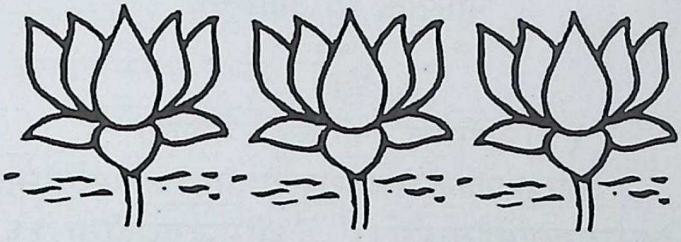

नास्तिक भी आस्तिक

(१) आस्तिक – नास्तिक – मीमांसा

'असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्। अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्।।' (श्रीमद्भगवद्गीता १६. ८),'असन्नेव स भवति। असद्ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः।' (तैत्तिरीयोपनिषत् २.६) , 'तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्। अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।।' (कठोपनिषत् १.२.१२) – इन वचनोंके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि जो समस्त विश्वके अधिष्ठानभूत प्रत्यगात्मस्वरूप ब्रह्मका अस्तित्व स्वीकार करता है और उसके प्रतिपादक अध्यात्मशास्त्रोंमें ; तद्वत् उसकी निरावरण स्फूर्तिके अमोघ साधन अध्यात्मयोगमें आस्थान्वित रहता है, वह हर्षशोकके वशीभूत

नहीं होता। इसके विपरीत जो सर्वाधिष्ठान प्रत्यगात्मस्वरूप ब्रह्मके अस्तित्वको और उसके प्रतिपादक वेदादिशास्त्रोंको ; तद्वत् उसके अधिगमके अमोघ साधन अध्यात्मयोगको स्वीकार नहीं करता; वह इस असन्मान्यताके कारण स्वयं असत् ही हो जाता है और हर्षशोकके वशीभूत रहता है। उसके देहेन्द्रिय – प्राणान्तःकरणकी समस्त चेष्टाएँ पशुतुल्य आहार, निद्रा, भय और मैथुनतक सीमित रहती हैं। वह शृङ्ग तथा पुच्छ – विहीन नरपशु मानवजीवनके महत्त्वको न समझकर जन्म तथा मृत्युकी अनादि और अजस्रपरम्पराका उच्छेद नहीं कर पाता।

प्रत्यगात्मस्वरूप ब्रह्मका अस्तित्व स्वीकार करनेपर ही उसकी प्राप्तिकी अभिरुचि और उत्कण्ठा होती है। ऐसा होनेपर ही पाशविक उच्छृङ्खलता मिटानेकी भावनासे वेदोक्त कर्मोपासना तथा ज्ञानमें अधिकारानुसार क्रमिक प्रीति तथा प्रवृत्ति सम्भव है–

कर्मणा जायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञानं प्रजायते।
ज्ञानात्प्रजायते मुक्तिरिति शास्त्रेषु निश्चयः।।
(शिवपुराण – उमा. ५१.१०)

''निष्कामभावसे अनुष्ठित स्वकर्मानुष्ठानके अमोघ प्रभावसे भगवद्भक्ति सुलभ होती है। भक्तिसे तत्त्वज्ञान समुत्पन्न होता है। ज्ञानसे मुक्ति सुलभ होती है। यह शास्त्रसम्मत सुनिश्चित सिद्धान्त है।।''

देहादि असत्पदार्थोंकी भावनाके अनुरूप मति, गति तथा स्थिति स्वभावसिद्ध है। अनात्मवस्तुओंके अनुरूप आत्ममान्यताके

कारण असद्वासनाके वशीभूत जीव मिथ्याभिनिवेशवश देहात्मभावको प्राप्त होता है। यद्यपि सत्संज्ञक स्वरूपभूत ब्रह्मका परित्याग असम्भव है, तथापि मदवश दुर्दृष्टिप्राप्त भ्रान्तसदृश सदा असद्भावभावित अन्तःकरण असद्भावापन्न होता है ; जबकि स्वरूपानुसन्धानसंलग्न अन्तःकरण भृङ्गीकीटन्यायवत् सद्भावापन्न होता है। अत एव असन्मान्यताका परित्यागकर स्वरूपानुरूप भावका समादर ही कैवल्यसिद्धिका अमोघ उपाय है–

मनसा भाव्यमानो हि देहतां याति देहकः।
देहवासनया मुक्तो देहधर्मैर्न लिप्यते।।
(महोपनिषत् ४.६७)

देहावसानसमये चित्ते यद्यद्भिभावयेत्।
तत्तदेव भवेज्जीव इत्येवं जन्मकारणम्।।
(योगशिखोपनिषत् १.३१)

भक्तिगम्यं परं तत्त्वमन्तर्लीनेन चेतसा।
भावनामात्रमेवात्र कारणं पद्मसम्भव।।
यथा देहान्तरप्राप्तेः कारणं भावना नृणाम्।।
(योगशिखोपनिषत् ३.२३,२४)

भावितं तीव्रसंवेगादात्मना यत्तदेव सः।
भवत्याशु कपिश्रेष्ठ विगतेतरवासनः।।
तादृग्यूपो हि पुरुषो वासनाविवशीकृतः।
संपश्यति यदैवैतत्सद्वस्त्विति विमुह्यति।।
वासनावेगवैचित्र्यात्स्वरूपं न जहाति तत्।
भ्रान्तं पश्यति दुर्दृष्टिः सर्वं मदवशादिव।।

(मुक्तिकोपनिषत् २.५८-६०)

तुरीयातीतावधूतयोः स्वात्मन्येव कैवल्यं स्वरूपानुसन्धानेन भ्रमरकीटन्यायवत्।।

(सन्न्यासोपनिषत् ५९)

भावानुरूप सिद्धि सुनिश्चित है। अत एव स्वतःसिद्ध ब्रह्मात्मतत्त्वके अनुरूप भावना ही उचित है। भाववृत्तिसे भावत्वकी तथा शून्यवृत्तिसे शून्यत्वकी सिद्धिको सुनिश्चित समझकर स्वतःसिद्ध ब्रह्मवृत्तिकी भावनासे पूर्णत्वका अभ्यास ही कर्त्तव्य है। ब्रह्मवृत्तिकी विहीनता पशुतुल्य जीवनकी व्यर्थता ही मान्य है। जीवनकी सार्थकता ब्रह्मवृत्तिको जानकर उसकी पुष्टि और पूर्णतामें ही सन्निहित है। ब्रह्मवृत्तिके ज्ञाता और परिपोषक सत्पुरुष त्रिभुवनमें अवश्य ही धन्य तथा वन्द्य हैं –

भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता।
ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वं तथा पूर्णत्वमभ्यसेत्।।
ये तु वृत्तिं विहायैनां ब्रह्माख्यां पावनीं पराम्।
वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः।।
ये तु वृत्तिं विजानन्ति ज्ञात्वा वै वर्धयन्ति ये।
ते वै सत्पुरुषा धन्या वन्द्यास्ते भुवनत्रये।।

(तेजोबिन्दूपनिषत् १.४२ -४४)

'नहीं है परमेश्वर – नहीं है ब्रह्म' – ऐसी भावनावाला व्यक्ति स्वयं अस्तित्वविहीन – सदृश हो जाता है। इसके विपरीत ब्रह्मके अस्तित्वको स्वीकार करनेवाला सत्सम्पन्न सन्त होता है। जिसकी

विद्यमानता ही जगत् के अस्तित्व और भानका रहस्य है, उस सच्चित्स्वरूप ब्रह्मका निराकरण अनर्गल प्रलाप और प्रबल प्रमाद है । अत एव ब्रह्मात्मतत्त्वमें आस्था अवश्य ही कर्त्तव्य है।

वेदान्तप्रस्थानके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि समग्र विश्व ब्रह्मकी अभिव्यक्ति और उसका अभिव्यञ्जक संस्थान है। नामरूपकर्मात्मक जगत् में अस्ति, भाति और प्रियकी अनुगति है–

अस्तीत्युक्ते जगत्सर्वं सद्रसं ब्रह्म तद्भवेत्।।
भातीत्युक्ते जगत्सर्वं भानं ब्रह्मैव केवलम्।
(वराहोपनिषत् २.७१,७२)
अस्ति चेदस्तितारूपं ब्रह्मैवास्तित्वलक्षणम्।।
अस्तिता लक्षणा सत्ता सत्ता ब्रह्म न चापरा।
(पाशुपतब्रह्मोपनिषत् ४३,४४)
अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति।।
(कठोपनिषत् ६.१३)

सत्स्वरूप ब्रह्मात्मतत्त्वकी सहिष्णुताकी स्फूर्ति अभ्युदय और निःश्रेयसप्रद वेदोक्त सनातनधर्मके अनुष्ठानसे ही सम्भव है। धर्मविहीन मनुष्य तृणतुल्य नगण्य अत एव असत्प्राय हो जाता है। सद्भाव, सद्विचार, सदाचारपूर्ण व्यक्ति धर्मशील मान्य है। परमात्मा और परलोकमें विश्वास रखनेवाला आस्तिक अत्याचार – अन्याय – अधर्मसे डरता है। सर्व सामान्यके सम्मुख भी पाप करनेमें सङ्कोच करनेवाला व्यक्ति सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् , सर्वज्ञ,

सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामीके अस्तित्वको स्वीकार कर पापाचारमें कैसे प्रवृत्त हो सकता है? अत एव सुमङ्गल विश्वकी संरचना आस्तिकवादसे ही सम्भव है।

पाणिनिने **'अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः' (अष्टाध्यायी ४.४.६०)** इस सूत्रसे यह भाव दर्शाया है कि **'अस्तीति मतिर्यस्य स आस्तिकः। नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिकः। दिष्टमिति मतिर्यस्य स दैष्टिकः। परलोक इत्येवं मतिर्यस्य सैवास्तिकः। नास्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स नास्तिकः। नास्ति परलोकः सर्वसाक्षीश्वरो वा इति मतिरस्य स नास्तिकः'** – 'परलोक है, ऐसी बुद्धि जिसकी है, वह आस्तिक है। परलोक नहीं है, या सर्वसाक्षी ईश्वर नहीं है, ऐसी मति जिसकी है, वह नास्तिक है।'

'देहके नाशसे आत्माका नाश नहीं होता। देहके भेदसे आत्मामें भेदकी प्राप्ति नहीं होती।' – इस तथ्यमें आस्थान्वित मनुष्य 'लोक और परलोकमें शुभ कर्मोंके फलस्वरूप सुख और अशुभ कर्मोंके फलस्वरूप दुःख अवश्य मिलता है', ऐसा मानते हैं। अत एव वे पापोंसे बचते हुए पुण्यके अर्जनमें संलग्न रहते हैं। वे सत्य, दया, दान, सेवा तथा संयमादि मानवोचित शीलके पक्षधर और पालक होते हैं। वे अपने जीवनका उपयोग और विनियोग स्वयंके और सबके हितमें अवश्य करते हैं।

जीवोंके शुभाशुभ कर्म और उपासनाके तारतम्यसे लोक – लोकन्तरोंकी संरचना मान्य है। अविद्या – काम और कर्मके वशीभूत जीवोंको जन्म और मृत्युकी अजस्र परम्परा प्राप्त है।

अज – अनादि – अविक्रिय विज्ञानघन अद्वितीय ब्रह्मात्मतत्त्वके विज्ञानसे उत्क्रमण और पुनर्भवरहित आत्मस्थिति सम्भव है। यह वैदिक सिद्धान्त है। धर्म और ब्रह्म वेदोंके अपूर्व प्रतिपाद्य हैं। वेदोंमें आस्थान्वित आस्तिक हैं। वेदनिन्दक नास्तिक हैं – **'नास्तिको वेदनिन्दकः' (मनुस्मृति २.११)**

वेदैकसमधिगम्य सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरके निःश्वासभूत वेद अपौरुषेय हैं। लोक – लोकान्तरोंकी संरचना , उनके पोषण और संहरणके प्रकार, स्रष्टा सर्वेश्वर, भोक्ता जीव और बन्ध – मोक्षके प्रकार एवम् भवतारक कर्म, उपासना और ज्ञानादिके स्वरूपका यथावत् प्रतिपादक वेदोंका स्वतःप्रामाण्य मान्य है।

ईश्वरके स्वरूपमें और जगत् की उत्पत्ति – स्थिति – संहृतिमें ; तद्वत् लोक – लोकान्तर और अध्यात्म – अधिदैवादि अतीन्द्रियार्थकी संस्थितिमें हमारे लिये श्रुति ही प्रमाण है। देशकालस्वरूपविप्रकृष्ट अतीन्द्रियार्थके अधिगममें श्रुति ही प्रमाण है। उस श्रुत्यैकसमधिगम्य सूक्ष्म अर्थमें प्रत्यक्षप्रमाणगृहीत – व्याप्त्युपजीवी तर्क क्या कर सकता है ? श्रुतिसिद्ध अर्थके उपोद्बलक तर्ककी सार्थकता है; न कि स्वतन्त्र तर्ककी सार्थकता है।

ईश्वरस्य स्वरूपे च जगत्सर्गादिषु द्विजाः।
अतीन्द्रियार्थेष्वर्थेषु मानं नः श्रुतिरेव हि।।
(सूतसंहिता – सूतगीता ३.२८)
श्रुत्यैकगम्ये सूक्ष्मार्थे स तर्कः किं करिष्यति।
मानानुग्राहकस्तर्को न स्वतन्त्रः कदाचन।।

(सूतसंहिता - सूतगीता ३.६)

तत्त्वनिर्धारणमें अतिरिक्त प्रमाणनिरपेक्ष एकमात्र वेदका समाश्रय ही उचित है। कारण यह है कि जैसे रूपोपलब्धिमें असाधारणकारण चक्षु ही है; वैसे ही धर्म – ब्रह्मादिके विज्ञानमें वेदका ही असाधारण प्रामाण्य सिद्ध है। जैसे रूपावलोकनमें घ्राण कारण नहीं है; वैसे ही धर्मादिविज्ञानमें तर्क कारण नहीं –

रूपावलोकने चक्षुर्यथाऽसाधारणं भवेत्।
तथा धर्मादिविज्ञाने वेदोऽसाधारणं परः।।
रूपावलोकनस्येदं यथा घ्राणं न कारणम्।
तथा धर्मादिबुद्धिस्तु द्विजास्तर्को न कारणम्।।

(सूतसंहिता - सूतगीता ३.३३-३४)

उक्त रीतिसे वेदोंमें आस्थाविहीन परलोक और परमेश्वरके अस्तित्वको न माननेवाला नास्तिक है।

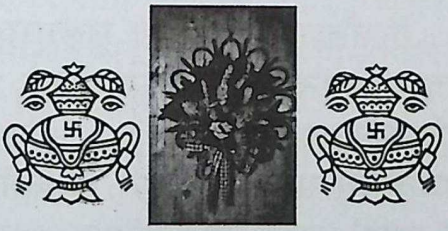

(२) नस्तिककी आस्तिकता

(नास्तिकोंमें भी मृत्यु, अज्ञता, दुःखसे अतिक्रान्त सत्, चित्, आनन्द , सर्वनियामक , परम स्वतन्त्र परमात्मस्वरूप होनेकी भावना)

उपनिषदोंमें ब्रह्मकी आत्मरूपताका वर्णन है। बह्म अनन्त सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वथा स्वतन्त्र और सर्वनियामक सर्वेश्वर है-

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तैत्तिरीयोपोनषत् २.१), 'आत्मानं सच्चिदानन्दं ब्रह्म सुव्रत। अहमस्मीत्यभिध्यायेद्ध्येयातीतं विमुक्तये ।।' (अन्नपूर्णोपनिषत् ५.७४), 'ज्ञानबलैश्वर्यशक्तितेजःस्वरूपो भवति। ...निरतिशयनिरङ्कुश सर्वज्ञसर्वशक्ति-सर्वनियन्तृत्वाद्यनन्तकल्याणगुणाकारो भवति।' (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् २)

'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय' (बृहदारण्यकोपनिषत् १.३.२८) के अनुशीलनसे जीवकी चाहका विषय सच्चिदानन्द सिद्ध होता है; जो कि उसका वास्तव स्वरूप ही है। शीतोष्णादि द्वन्द्व, मृत्युभय, काम-क्रोध-मोह और दुःखसे असंस्पृष्ट; सुषुप्ति तथा जडतासे अतिक्रान्त

समाधिके अनुशीलनसे सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माकी सहिष्णुताका उदय सम्भव है।

भजनीय सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर भक्तोंके सर्वस्व हैं, वे ज्ञानियोंके एकमात्र परम तत्त्व हैं, वे ही नास्तिकशिरोमणियोंकी भी वाञ्छाके वास्तव विषय हैं। नास्तिकशिरोमणि अनीश्वरवादी भी अपने अस्तित्वका उच्छेद नहीं चाहता, वह भी अपने अस्तित्वमें पूर्ण अनुरक्त होता ही है। साधारण – से – साधारण प्राणी भी आत्मरक्षाके लिये व्यग्र रहता है। इदमर्थ तथा मदर्थकी स्वतः प्रियता नहीं है। अहमर्थकी ही स्वतः प्रियता सदा सिद्ध है। अपने अस्तित्वकी अलिप्तताकी अखण्डभावना आत्माकी परप्रेमास्पदता सिद्ध करती है–

अहमेव सुखं नान्यदन्यच्चेन्नैव तत्सुखम्।
अमदर्थं न हि प्रेयो मदर्थं न स्वतः प्रियम्।।
परप्रेमास्पदतया मा न भूवमहं सदा।
भूयासमिति यो द्रष्टा सोऽहं विष्णुर्मुनीश्वर।।
(वराहोपनिषत् २.७ -८)

वस्तुस्थिति यह है कि पार्थिव पुष्पादिका पृथ्वीके प्रति, जलधाराका सागरके प्रति, वह्निज्वालाका सूर्यके प्रति स्वाभाविक आकर्षण प्रत्येक अंशकी अंशीके प्रति स्वाभाविक आकर्षणको सिद्ध करता है। निज वास्तव स्वरूपके अनभिज्ञ बहिर्मुख प्राणी भी उसके प्रति आस्थान्वित रहता ही है। अत एव **'वस्तुशक्ति ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रखती'**, यह तथ्य सिद्ध है। **'वस्तुशक्ति**

जहाँ ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रखती, वहाँ अज्ञानशक्ति भटकाये बिना नहीं रहती', यह तथ्य भी अनुभवसिद्ध है। कस्तूरीके मृगको निज नाभिमण्डलमें सन्निहित कस्तूरीका अबोध होनेपर भी निर्गन्ध तृणादिके आघ्राणसे भी आमोद सुलभ होता ही है; परन्तु इस तथ्यके अबोधके कारण उसका भटकना भी प्रसिद्ध ही है। अत: वस्तुशक्तिके बलपर जहाँ स्वरूपके प्रति आकर्षण सिद्ध है ; वहाँ अज्ञानशक्तिके बलपर भवाटवीमें भटकना भी सुनिश्चित है।

अपने अस्तित्वका पूर्णानुरागी नास्तिककी कदाचित् सौभाग्यवश वास्तव आत्माके अनुसन्धानकी ओर दृष्टि फिर गयी, तब तो वह समझ लेगा कि 'विनश्वर देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार बाह्य वृक्षादिके सदृश दृश्य तथा मेरे हैं तथा मैं इनसे पृथक् इनका द्रष्टा हूँ। मैं इसी दृक्स्वरूप निर्विकार आत्माका ही सदा अस्तित्व चाहता हूँ।'

अभिप्राय यह है कि **'असतो मा सद्गम' (बृहदारण्यकोपनिषत् १.३.२८)** के अनुसार स्वयंको मृत्युग्रस्त देहेन्द्रियप्राणान्त:करणसे विनिर्मुक्त अखण्ड सत्स्वरूप समझना सम्भव है।

आत्मा स्वप्रकाश असन्दिग्ध है। दृश्यादिके अस्तित्वका अभाव सिद्ध करनेवाले शून्यवादीको भी अनिच्छया आत्माका अस्तित्व सिद्ध करना ही पड़ता है। कारण यह है कि सबके अभावको सिद्ध करनेवाला स्वयंका अभाव सिद्ध नहीं कर सकता।

सबका निराकरण करनेवाला सर्वसाक्षी स्वयं सर्वनिषेधकी अवधि है। उसे अस्वीकार करनेपर शून्य भी अप्रामाणिक होगा।

सर्वसाक्षी सर्वबाधका अधिष्ठानभूत अत्यन्त अबाध्य है। गृहधर्मसे अलिप्त प्रदीपवत् निर्विकार उदासीन साक्षीको साक्ष्यधर्म स्पर्श नहीं करते –

''न साक्षिणं साक्ष्यधर्माः संस्पृशन्ति विलक्षणम्।
अविकारमुदासीनं गृहधर्माः प्रदीपवत्।।''
(कुण्डिकोपनिषत् २३)

दृश्य, दर्शन, द्रष्टा तथा ज्ञेय, ज्ञान, ज्ञातारूप त्रिपुटीके शिरोभागमें स्थित द्रष्टा या ज्ञातामें स्वभावसिद्ध आत्मबुद्धि आत्माके असन्दिग्ध ऊर्ध्वस्थित अस्तित्वमें आस्थान्वित करती है। इसीके द्वारा दृश्य तथा दर्शननिरपेक्ष द्रष्टाकी; तद्वत् ज्ञेय तथा ज्ञाननिरपेक्ष ज्ञाताकी तत्त्वरूपताके अधिगमका मार्ग प्रशस्त होता है। जिस प्रकार अधिभूत रूप, अध्यात्म नेत्र तथा अधिदैव सूर्य जिससे उद्दीप्त हैं, वह तेज इनमें अनुगत तथा इनसे अतीत , अत एव निरपेक्ष और अद्वय है; उसी प्रकार ज्ञेय, ज्ञान, ज्ञाता जिससे उद्दीप्त हैं, वह ज्ञान इनमें अनुगत तथा इनसे अतीत , अत एव निरपेक्ष और अद्वय है।

उक्त रीतिसे प्राणिमात्रके हृदयमें मृत्युके चपेटसे विमुक्त अमृतत्वकी, जडता – अज्ञताके चपेटसे विमुक्त अखण्ड विज्ञानकी एवम् दैहिक – दैविक – भौतिक तापके चपेटसे विमुक्त अलुप्त आनन्दकी भावना सन्निहित है। तद्वत् प्रत्येक प्राणी परतन्त्रताविहीन परम स्वतन्त्र तथा प्रभुतासम्पन्न सर्वनियामक होना चाहता है।

जिस प्रकार प्यासके विषय पानीका, भूखके विषय भोजनका, श्रोत्रके विषय शब्दका, त्वक् के विषय स्पर्शका, नेत्रके विषय रूपका, रसनेन्द्रियके विषय रसका तथा नासिकाके विषय गन्धका अस्तित्व अवश्य है; उसी प्रकार जीवकी चाहके विषय सच्चिदानन्दसर्वेश्वरका अस्तित्व अवश्य है। वह रूपादिके सदृश अयोगास्पद, संयोगास्पद और वियोगास्पद भी नहीं है ; अपितु जल या जलदेवकी चाहके विषय जलके सदृश स्वरूपभूत साक्षात् प्रत्यगात्मा – अन्तरात्मा ही है।

''यदेव साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरः " (बृहदारण्यकोपनिषत् ३.४.२) , ''देशतः कालतो वस्तुतः परिच्छेदरहितं ब्रह्म" (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् १) के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि ब्रह्म देशकृत, कालकृत तथा वस्तुकृत व्यवधानसे रहित साक्षात् अपरोक्ष प्रत्यगात्मा ही है। वह अबाध्य और अपरोक्ष होनेके कारण सत् है, अवेद्य और अपरोक्ष होनेके कारण चित् है, परप्रेमास्पद अभोग्य और अपरोक्ष होनेके कारण आनन्द है। असत् (अनित्य), अचित् और दुःखसे सर्वथा अतीत होनेके कारण स्वतन्त्र है। रज्जुसर्पका रज्जुतुल्य असच्चिदानन्दरूप अनात्मप्रपञ्चका अधिष्ठान होनेके कारण सर्वनियामक है।

प्राणिमात्रकी चाहका विषय अखण्ड सत्ताके सदृश जडता या अज्ञानके चपेटसे विनिर्मुक्त अखण्ड विज्ञान है। अहं तथा इदंकी निसर्गसिद्ध जिज्ञासा जीवोंके जीवनमें दृष्टिगोचर है। स्थावर

तथा जङ्गम प्राणियोंके जीवनमें पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंके माध्यमसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध होकर जगत् ग्राह्य बनता है। बाह्य शब्दादि विषयोंका और अभ्यन्तर सुख, दुःख तथा मोहका पर्यवसान ज्ञानमें होता है। सुषुप्तिसुलभ सुख और अज्ञानका पर्यवसान भी ज्ञानमें ही होता है। श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, व्याकरण, दर्शन, भूगोल, खगोल एवम् नृत्य – गानादि विविध विद्या और कलाका पर्यवसान ज्ञान ही सिद्ध है। अर्थरूप यह जगत् ज्ञानस्वरूप होकर ही भोग्य सिद्ध होता है; अत एव जगत् की वस्तुतः ज्ञानरूपता ही सिद्ध है; अज्ञानके वशीभूत अज्ञोंकी दृष्टिमें ही यह अर्थस्वरूप है–

ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विलक्षणम्।
अर्थस्वरूपमज्ञानात्पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टयः।।
(श्रीजाबालदर्शनोपनिषत् ६.४९)

समग्र अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवसहित कार्यकारणात्मक प्रपञ्चको जाननेकी इच्छा जीवमें सन्निहित है। अतः वह सर्वज्ञ होना चाहता है, यह तथ्य सिद्ध है। सर्वभासक स्वप्रकाश सर्वद्रष्टा चिद्रूप होनेकी भावना स्वरूपके विरूप न होकर सर्वथा अनुरूप ही है। द्रष्टा, ज्ञातादिरूपोंमें उल्लसित यह जीव स्वयं ज्ञानस्वरूप ही सिद्ध होता है। वटवृक्ष और वटबीजका ज्ञाता वटज्ञ मान्य है; तद्वत् सृष्टि और सृष्टिबीजका ज्ञाता सर्वज्ञ मान्य है। जाग्रत् तथा स्वप्नमें अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवरूप कार्यवर्गका ज्ञाता तथा सुषुप्तिमें बीजभूत अज्ञानका ज्ञाता जीव सर्वज्ञ सिद्ध है –

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष

योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्।
(माण्डूक्योपनिषत् ६)

उक्त रीतिसे प्राणिमात्रके हृदयमें सन्निहित जडता – अज्ञताके चपेटसे विमुक्त विज्ञानकी भावना सन्निहित है। अत एव **'तमसो मा ज्योतिर्गमय' (बृहदारण्यकोपनिषत् १.३.२८)** के अनुसार स्वयंको जडता – अज्ञताविहीन अखण्डबोधस्वरूप चिद्रूप समझना सम्भव है।

पुष्प और फलादि पार्थिव पदार्थोंके आकर्षणका विषय अंशी पृथ्वी है, जलप्रपातोंके आकर्षणका विषय अंशी सागर है, वह्निज्वालाके आकर्षणका विषय अंशी सूर्य है; तद्वत् जीवोंके आकर्षणका विषय अंशीसदृश सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर है। प्रत्येक अंश स्वभावतः अपने अंशीकी ओर ही आकृष्ट होता है। अत एव जीवोंके आकर्षणका विषय सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर ही सिद्ध है।

जीवके अंशी – सदृश भगवान् अनन्त सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वतन्त्रस्वतन्त्र सर्वेश्वर हैं। अतः जीवमें उन्हें प्राप्त करनेकी अर्थात् तद्रूप होनेकी भावना निसर्गसिद्ध है। सर्वसाक्षीकी सद्रूपता तथा चिद्रूपता स्वतःसिद्ध है।

अन्योंमें आत्माके लिये और आत्मामें आत्माके लिये ही प्रीति तद्वत् अन्योंमें आनन्दके लिये और आनन्दमें आनन्दके लिये ही प्रीति लक्षणसाम्यसे वस्तुसाम्यकी दृष्टिसे परप्रेमास्पद आत्माकी परमानन्दरूपता सिद्ध करती है।

संसारमें पशु, कीट, पतङ्गपर्यन्त कोई भी ऐसा नहीं है, जो आनन्दके लिये व्यग्र न रहता हो। प्राणियोंके देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणकी समग्र चेष्टाएँ आनन्दोपलब्धिकी भावनासे ही होती हैं। वित्त – पुत्रादि अन्योंमें प्रीति जिसके लिए हो और जो निरतिशय और निरुपाधिक परप्रेमका आस्पद हो, उसे **'आनन्द'** कहते हैं –

' न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।' (बृहदारण्यकोपनिषत् २.४.५, ५.५.६),'तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतमं यदयमात्मा स योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात् प्रियं रोत्स्यतीतीश्वरो ह तथैव स्यादात्मानमेव प्रियमुपासीत स य आत्मानमेव प्रियमुपास्ते न हास्य प्रियं प्रमायुकं भवति।' (बृहदारण्यकोपनिषत् १.४.८)

उक्त वचनोंके अनुसार पुत्र, वित्तादि अन्योंमें प्रीति आत्माके लिए होती है, न कि आत्मामें प्रीति अन्योंके लिए। यह अनुभवसिद्ध तथ्य है। तद्वत् यह भी अनुभवसिद्ध तथ्य है कि अन्योंमें प्रीति सुखके लिए होती है, न कि सुखमें प्रीति अन्योंके लिए। तथापि देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरणसहित प्रिय, मोद, प्रमोदसंज्ञक विषयसुखसे उपरामताके अनन्तर सुषुप्ति सुलभ होती है। भोक्ता, भोग, भोग्यके बिना विषयजन्य आनन्दकी समुपलब्धि असम्भव है। जहाँ त्रिपुटी होती है; वहाँ द्वैत अवश्य होता है। जहाँ द्वैत होता है, वहाँ श्रम होता ही है, जहाँ श्रम होता है, वहाँ निरतिशय सुख नहीं होता। सुषुप्तिमें त्रिपुटीकी बीजावस्था होती है। उससे भी

उपरामता और उसकी भावना अनुभवसिद्ध है। अभोग्य होता हुआ अपरोक्ष स्वप्रकाश सुखकी निरुपाधिक परप्रेमास्पदता अत एव आत्मरूपता सिद्ध है। जाग्रत् में अभीष्ट विषयेन्द्रियसंयोगसुलभा बहि:प्रज्ञा परप्रेमास्पद आनन्दरूप स्वप्रकाश आत्माका अभिव्यञ्जकसंस्थान है। स्वप्नमें विषयवासनावासिता अन्त:प्रज्ञा परप्रेमास्पद आनन्दरूप स्वप्रकाश आत्माका अभिव्यञ्जकसंस्थान है। सुषुप्तिमें चिन्मयी अविद्यावृत्तिरूपा घनीभूता प्रज्ञा परप्रेमास्पद आनन्दरूप स्वप्रकाश आत्माका अभिव्यञ्जकसंस्थान है। समाधिमें वैराग्यरसगर्भिणी आनन्दस्यन्दिनी निर्विकल्पा चिन्मात्रा विशुद्ध सत्त्वात्मिका संवित्प्रज्ञा परप्रेमास्पद आनन्दरूप स्वप्रकाश आत्माका अभिव्यञ्जकसंस्थान है। स्वप्रकाश अभिव्यङ्ग्य अभोग्य आनन्द ही वस्तुत: आनन्द है।

स्रक् – चन्दन – वनितादि आनन्दके समस्त साधनोंमें प्रेम अस्थिर होता है। स्त्री – पुत्रादिमें प्रेम तभी तक रहता है, जब तक वे अनुकूल रहते हैं, प्रतिकूल होते ही उनमें द्वेष हो जाता है। सब आनन्दकी प्राप्तिके लिये लालायित और प्रयत्नशील रहते हैं, तथापि उसे पहचान नहीं पाते। जिस आनन्दकी उपलब्धिके लिये नास्तिक भी व्यग्र रहता है, उसे वह पहचानता नहीं। वह तो सुखसाधन अभीष्ट स्त्रीपुत्रादि और शब्दस्पर्शादिके सेवनसे सुलभ क्षणिक सुखको ही वास्तव सुख मानकर सन्तुष्ट हो जाता है। परन्तु प्रामाणिक निरीक्षण तथा परीक्षण करनेपर यह सिद्ध होता है कि जिसमें कभी प्रेम और कभी द्वेष हो, वह सुख नहीं। जिसमें सदा

ही निरतशय और निरुपाधिक प्रेम सुलभ हो, वही सुख है। संसारके सम्भोगसाधन स्थिर प्रेमास्पद नहीं; अत एव वे सुखरूप भी नहीं । वस्तुस्थिति यह है कि अभिलषित पदार्थकी समुपलब्धि तथा सेवनसे तृष्णाशमनके अनन्तर शान्त तथा अन्तर्मुख मनपर जिस सुखका आभास या प्रतिबिम्ब पड़ता है, वह बिम्बभूत अन्तरात्मा ही आनन्द है – **'सुखमस्यात्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः' (श्रीमद्भागवत ७.१३.२६)**

अभोग्य होता हुआ अपरोक्ष स्वप्रकाश सुखकी निरुपाधिक परप्रेमास्पदता, अत एव आत्मरूपता सिद्ध है।

जीवको मृत्युग्रस्त देहादिमें अहंता तथा ममताके कारण मृत्युका भय प्राप्त है, स्वतः वह सत्स्वरूप मृत्युञ्जय ही है।

जीवको अचित् देहादिमें अहंता तथा ममताके कारण विमूढता प्राप्त है; स्वतः वह चित्स्वरूप विज्ञानघन ही है।

जीवको दुःखप्रद देहादिमें अहंता तथा ममताके कारण दुःख प्राप्त है; स्वतः वह आनन्दस्वरूप ही है।

उक्त रीतिसे प्राणिमात्रके हृदयमें सन्निहित दैहिक – दैविक – भौतिक तापके चपेटसे विनिर्मुक्त आनन्दकी भावना स्वभावसिद्ध है।

अभिप्राय यह है कि **'मृत्योर्माऽमृतं गमय' (बृहदारण्यकोपनिषत् १.३.२८)** के अनुसार स्वयंको त्रिविध तापोंसे विनिर्मुक्त अखण्ड आनन्दस्वरूप समझना सम्भव है।

इस प्रकार; अन्तः आराम, अन्तर्ज्योति और अन्तःसुख

योगीका जीवन धन्य है–

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।
(श्रीमद्भगवद्गीता ५.२४)

जीव स्वयंकी अबाध अकुण्ठ अप्रत्याहत गति चाहता है। यह पूर्णरूपसे तभी सम्भव है, जब वह स्वरूपतः अनन्त हो। उसकी यह भावना भी उसके वास्तवरूप अंशीसदृश परमात्माकी अनन्तताके कारण ही है। उपादेयमें उपादानकी ; तद्वत् अध्यस्तमें अधिष्ठानकी व्यापकता अनन्तता है। सर्वोपादान – सर्वाधिष्ठान ब्रह्मकी सर्वविध अनन्तता सिद्ध है। वह नित्य, विभु और सर्वात्मा है। अत एव कालकृत, देशकृत तथा वस्तुकृत परिच्छेदशून्य अनन्त है।

जीव स्वतन्त्रता चाहता है। एक चींटी भी पकड़े जानेपर व्याकुलतासे हाथ – पैर चलाती है। शुक – सारिका आदि पक्षी सोनेके पिंजड़ेमें रहकर सुन्दर, मधुर भोजनकी अपेक्षा बन्धनमुक्त होकर वनके खट्टे फलोंको खाकर भी जीवन व्यतीत करनेमें ही सच्चे आनन्दका ही अनुभव करते हैं। इस तरह प्राणिमात्र बन्धनमुक्त – सर्वथा स्वतन्त्र होनेके लिये लालायित रहते हैं। ऐसी स्थितिमें कौन नास्तिक बन्धविहीन स्वतन्त्रता नहीं चाहेगा ? परन्तु स्वतन्त्रताके यथार्थ स्वरूपपर विवेचन करनेसे स्पष्ट होगा कि यह भी भगवान् का ही स्वरूप है। बिना असङ्ग भगवान् को प्राप्त किये बन्धनमुक्ति और स्वतन्त्रताकी कल्पना अत्यन्त ही निराधार है। जबतक स्थूल,

सूक्ष्म और कारण शरीरका सम्बन्ध विद्यमान है, तब तक स्वतन्त्रता कैसी? भले ही कोई माता, पिता, गुरु और वेद – शास्त्रोंके आदेशों और उपदेशोंको न माने – उनसे स्वयंको स्वतन्त्र मान ले; परन्तु जन्म, व्याधि, जरा, दरिद्रता, विपत्ति और मृत्युके परतन्त्र तो उसे होना ही पड़ता है। जब तक कुछ स्वतन्त्रता त्यागकर माता, पिता, गुरु और वेद – शास्त्रोंके आदेशों और उपदेशोंको मान कर कर्म, उपासना और ज्ञानद्वारा मल, विक्षेप और आवरणको दूर करके स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरके बन्धनसे मुक्त होकर मनुष्य निज निर्विकार स्वरूपको न प्राप्त कर ले, तब तक उसे पूर्ण स्वातन्त्र्य मिल सकता ही नहीं। इस विवेचनसे स्पष्ट हो जाता है कि स्वतन्त्रता भी सर्वोपाधिविनिर्मुक्त असङ्ग, अनन्त, स्वप्रकाश, प्रत्यगभिन्न भगवान् का ही स्वरूप है।

इसी तरह प्राणिमात्रकी यह भी रुचि होती है कि मैं स्वाधीन रहूँ ; सब कुछ मेरे अधीन रहे। मनुष्य यहाँ तक चाहता है कि माता, पिता, गुरु मेरा निवेदन मान लिया करें, वे सब तरह मेरे अनुकूल रहें। वह देव, पितर आदिको भी अपनी भावनाके वशवर्ती सर्वथा अपने अनुकूल देखना चाहता है। इस भावनाकी सम्पूर्ति भी जीवभावके रहते नहीं हो सकती। समस्त कल्पित पदार्थ कल्पनाके अधिष्ठानभूत भगवान् के ही अधीन हैं।

ब्रह्मात्मबोधसम्पन्न सर्वथा असङ्ग जीवन्मुक्तका सत्त्वसंज्ञक चित्त विशुद्ध सत्त्वोपाधि सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरसे

तादात्म्यापन्नताकी स्थितिमें स्वतन्त्रता तथा नियामकतादि विविध ऐश्वर्यसम्पन्न होता है।

उक्त विवेचनके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि पूर्ण अस्तित्व, पूर्ण बोध , पूर्ण आनन्द , पूर्ण स्वातन्त्र्य एवं पूर्ण नियामकत्व भगवान् में ही सम्भव है। अतः जीवकी वाच्छाके विषय वेदान्तवेद्य साक्षात् सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर ही सिद्ध हैं। उन्हें आत्मीय और साक्षात् आत्मस्वरूप समझकर उनकी उपासनासे ही जीवोंके मनोरथकी सिद्धि सम्भव है।

पृथिव्यादि पञ्चभूतोंके सहित सर्व स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंके उद्गमस्थान सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर ही सबके वास्तव स्वरूप हैं। ऐसे प्रभुसे विमुख होकर निःसत्त्व, निःस्फूर्ति, निरानन्द, नियम्य, निबद्ध कौन होना चाहेगा ?

(३)आत्मानुशीलनकी स्वस्थविधा

ध्यान रहे–

सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः।
इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि।।

(श्रीमद्भागवत १०.१४.५०)

"राजन् ! जगत् के सब प्राणी आत्मासे ही सर्वाधिक प्रेम करते हैं। अन्य स्त्री, पुत्र, धनादि परप्रेमास्पद आत्माके शेषरूप आत्मीय होनेके कारण ही प्रिय लगते हैं।।"

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया।।

(श्रीमद्भागवत १०.१४.५५)

"इन श्रीकृष्णको ही तुम अखिल आत्माओंका भी आत्मारूप समझो। वे जगत् के हितके लिए स्वशक्तिगत सत्त्वसंज्ञक मायाके योगसे यहाँ अवतीर्ण होकर देही – सरीखे परिलक्षित होते हैं।।"

सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः।
तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद् वस्तु रूप्यताम्।।

(श्रीमद्भागवत १०.१४.५७)

"कार्यकोटिके सब पदार्थोंका सन्निकट निर्विशेषरूप कारणमें

पर्यवसान सुनिश्चित है। इस दृष्टिसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशक्रमसे कार्यात्मक व्यक्त वस्तुओंका पर्यवसान त्रिगुणात्मिका अव्यक्त माया है। उसके भी पर्यवसान परम भावरूप सच्चिदानन्दस्वरूप स्वयं श्रीकृष्ण हैं। ऐसी स्थितिमें उनसे अधिष्ठित और उज्जीवित माया और मायिक जगत् में कौन – सा उनके अतिरिक्त पदार्थ है, जिसे पृथक् से परिभाषित तथा ख्यापित किया जाय! अभिप्राय यह है कि जड़वर्गके आकर्षणकेन्द्र और जीवोंके परप्रेमास्पद परमभावरूप सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ही हैं।।''

वस्तुस्थिति यह है कि भगवान् प्राणिमात्रके प्रेमास्पद हैं। जैसे झषों (मछली आदि) को जल अभीष्ट होता है ; वैसे ही प्राणिमात्रके निरुपाधिक प्रेमास्पद भगवान् इष्ट हैं–

''हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणा-
मात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ।
हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे
तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम्।।''
(श्रीमद्भागवत ५.१८.१३)

सत्स्वरूप आत्माका नाश सर्वथा असम्भव है। चिद्रूप आत्माका जाड्य सर्वथा असम्भव है। आनन्दस्वरूप आत्माको दु:ख सर्वथा असम्भव है। केवल अज्ञानके कारण ही उसे मृत्यु, जडता तथा दु:खका विभ्रम प्राप्त है–

चिद्रूपत्वान्न मे जाड्यं सत्यत्वान्नानृतं मम।

आनन्दत्वान्न मे दुःखमज्ञानाद्भाति सत्यवत्।।
(आत्मप्रबोधोपनिषत् ३०)

देश – काल – वस्तु – निमित्तसे जिसका विनाश न हो, वह अविनाशि सत् है–

'सत्यमविनाशि। अविनाशि नाम देशकालवस्तुनिमित्तेषु विनश्यत्सु यन्न विनश्यति तदविनाशि।'(सर्वसारोपनिषत् १)

उत्पत्ति तथा विनाशशून्य नित्य चैतन्यस्वरूप ज्ञान है –

'ज्ञानं नामोत्पत्तिविनाशरहितं नैरन्तर्यं चैतन्यं ज्ञानमित्युच्यते। (सर्वसारोपनिषत् १)

अविशिष्ट अपरिमित सुख चैतन्यस्वरूप आनन्द है–

'आनन्दं नाम सुखचैतन्यस्वरूपोऽपरिमितानन्द-स्वरूपोऽविशिष्टसुखस्वरूपश्चानन्द इत्युच्यते।' (सर्वसारोपनिषत् १)

सच्चिदानन्दस्वरूपको जानकर आनन्दरूपा स्थिति सुख है–

'सुखमिति च सच्चिदानन्दस्वरूपं ज्ञात्वानन्दरूपा या स्थितिः सैव सुखम्।'(निरालम्बोपनिषत्)

घटादिमें मृत्तिकाकी, सुवर्णाभूषणोंमें सुवर्णकी, तन्तुपटमें तन्तुओंकी व्याप्तिके तुल्य व्यक्ताव्यक्त प्रपञ्चमें व्यापक पूर्ण चिदात्मा अनन्त है–

अनन्तं नाम मृद्विकारेषु मृदिव स्वर्णविकारेषु स्वर्णमिव

तन्तुविकारेषु तन्तुरिवाव्यक्तादिसृष्टिप्रपञ्चेषु पूर्णं व्यापकं चैतन्यमनन्तमित्युच्यते।

(सर्वसारोपनिषत् १)

निज सर्वस्वके बिना किसीको भी कैसी विश्रान्ति ? तरङ्गकी जैसी समुद्रानुगामिता है, ठीक वैसी ही प्राणिमात्रकी भगवदनुगामिता है। भेद यही है कि ज्ञानी अपने प्रियतमको जानकर प्रेम करता है ; जबकि अन्य उन्हें न जानते हुए भी उन्हींके लिये व्यग्र रहते हैं। बहिर्मुखताके समाश्रयणसे लक्ष्य बदल जाता है । मनुष्यकी द्रव्योपार्जन, शिष्यसम्पादन, मानादिकी ओर प्रवृत्ति होने लगती है। यहाँ तो वैराग्य चाहिए । बिना वैराग्यके फटी – पुरानी गुदड़ी भी नहीं छूटती । पर वह वैराग्य सदा बना नहीं रहता। यदि वैराग्य सदा बने रहे, देह – इन्द्रिय – प्राण – अन्तःकरणसे विविक्त आत्मामें ही आत्मबुद्धि हो तो कौन बन्धनसे मुक्त न हो–

देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम्।
आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते।।

(वराहोपनिषत् २.१५)

देहात्मवादियोंका यह कथन है कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशसंज्ञक पञ्चभूतोंका सङ्घात यह देह काल, कर्म और गुणके अधीन है – **'कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः'** **(श्रीमद्भागवत १.१३.४५)**। पञ्चभूतोंमें किसी एकके आघातसे शेष चारोंका उच्छेद सुनिश्चित है। शरीरके छेदन – भेदन तथा ज्वर – व्रणादिके कारण देहगत पार्थिवांशका उच्छेद सुनिश्चित

है। जलके अग्रहणसे देहगत जलांशका उच्छेद सुनिश्चित है। भोजनके अग्रहणसे देहगत अग्निका उच्छेद सुनिश्चित है। श्वासके अवरोधसे शरीरगत वायुका उच्छेद सुनिश्चित है। उदरभेदसे शरीरगत आकाशका उच्छेद सुनिश्चित है। इस प्रकार पञ्चभूतोंके सङ्घातरूप शरीरमें किसी एकके पीडित होनेपर पञ्चत्वकी प्राप्ति सुनिश्चित है–

नश्यन्त्यापो ह्यनाहाराद् वायुरुच्छ्वासनिग्रहात्।
नश्यते कोष्ठभेदात् खमग्निर्नश्यत्यभोजनात्।।
व्याधिव्रणपरिक्लेशैर्मेदिनी चैव शीर्यते।
पीडितेऽन्यतरे ह्येषां सङ्घातो याति पञ्चधा।।

(महाभारत - शान्तिपर्व १८६.८,९)

शवभूत शरीर विविध जीवोंका आहार बनता है या जला देनेपर भस्म हो जाता है। वृक्षका नाश हो जानेपर भी बीजसे वृक्षसहित बीजान्तरकी उत्पत्ति परिलक्षित है; अतः मृतका पुनर्भव असम्भव है। पूर्वकालसे बीजसे बीजान्तरकी निष्पत्ति ही सिद्ध है; न कि मृतकी पुनरुत्पत्ति। अतः बीजसे बीजोत्पत्तिके सदृश सृष्टिका प्रवर्तन सम्भव है –

बीजमात्रं पुरा सृष्टं यदेतत् परिवर्तते।
मृतामृताः प्रणश्यन्ति बीजाद् बीजं प्रवर्तते।।

(महाभारत - शान्तिपर्व १८६.१५)

उक्त आक्षेपोंका समाधान यह है कि अभिव्यञ्जक संस्थान दाह्य दारुके दाहसे अग्निका विलोप होनेपर भी वस्तुतः वह

अव्यक्तभावापन्न होकर अवशिष्ट रहता है। तद्वत् देहत्यागके अनन्तर भी जीवका मौलिक रूप अवशिष्ट ही रहता है।

देहात्मवादियोंका यह भी कथन है कि देहगत आकाश, वायु और तेज स्वतः अमूर्त होनेपर भी मूर्त परिलक्षित होते हैं। देहगत वह्नितत्त्व प्राणवायुसे तादात्म्यापन्न होता है। श्वासावरोधसे अग्नि तथा प्राण दोनोंका विलोप होनेपर जीवनलीलाका अन्त होता है। तदनन्तर समष्टि आकाशगत ही अमूर्तभावापन्न अग्निसहित वायुकी विद्यमानता मान्य है। देहगत जल तथा पार्थिवांश भूमिसे तादात्म्यापन्न होकर ही शेष रहते हैं।

जीवनमें मनोयुक्त पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंसे शब्दादि पञ्च विषयोंकी समुपलब्धि अनुभवसिद्ध है। अमनस्कदशामें विषयोपलब्धि असम्भव है। सुषुप्तिदशामें इन्द्रियसहित मनका व्यापार परिलक्षित नहीं होता। ऐसी स्थितिमें यह विचारणीय विषय है कि इन्द्रियसहित मनका प्रवर्तक, ध्यान तथा ज्ञानादिका सम्पादक कौन है ? भूतगुण शब्दादि विषयोंके ग्रहणमें पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ प्रयुक्त तथा विनियुक्त हैं और इनके विसर्जनमें पञ्च कर्मेन्द्रियाँ प्रयुक्त तथा विनियुक्त हैं। इनके सहित इनमें तादात्म्यापन्न ज्ञान और कर्मका सम्पादक मन तथा इनका उपोद्बलक प्राण भी सूक्ष्म भूतोंका कार्य है।

उक्त आक्षेपोंका समाधान यह है कि जिस प्रकार पाञ्च भौतिक स्थूल शरीर कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और प्राणसहित अन्तःकरणात्मक सूक्ष्मशरीरका अभिव्यञ्जक संस्थान है; उसी प्रकार सूक्ष्मशरीर मलिन सत्त्वात्मक कारणशरीरका अभिव्यञ्जक

संस्थान है। तद्वत् कारणशरीर जीवका और जीव शिवका अभिव्यञ्जक संस्थान है।

क्षेत्रज्ञ नित्य लोकहितात्मक अर्थात् हितसंज्ञक परमात्मस्वरूप ही है। सत्त्व, रजस् तथा तमस् संज्ञक त्रिगुण त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे समुद्भूत हैं। अत एव प्रकृतिस्थ जीवके भी ये गुण मान्य हैं –

क्षेत्रज्ञं तं विजानीहि नित्यं लोकहितात्मकम्।
तमो रजश्च सत्त्वं च विद्धि जीवगुणानिमान्।।

(महाभारत – शान्तिपर्व १८७.२५)

क्षेत्रज्ञ सर्वलोकोंका हितरूप परमात्मस्वरूप ही है। वह पद्मपत्रस्थ जलसे पद्मपत्रके समान देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणसे सर्वथा विविक्त अतीत ही है–

आत्मा तं विजानीहि नित्यं सर्वलोकहितात्मकम्।
तस्मिन् यः संश्रितो देहे ह्यब्बिन्दुरिव पुष्करे।।

(महाभारत – शान्तिपर्व १८७.२४)

देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणमें तादात्म्यापन्न क्षेत्रज्ञसंज्ञक जीवकी चाहका मौलिक विषय सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा ही है; जो कि देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणसे विविक्त जीवका निज वास्तवरूप ही है –

आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः।
तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः।।

(महाभारत – शान्तिपर्व १८७.२३)

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

अनुरोध

मान्य महानुभाव! सस्नेह स्मरण तथा अभिनन्दन। श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरी - उड्यान -पीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती महाभागद्वारा संस्थापित 'स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान' से प्रकाशित धर्म, अध्यात्म, संस्कृति, आयुर्वेद, गणित तथा राष्ट्रविषयक सुदुर्लभ शताधिक ग्रन्थोंका अनुशीलनकर सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, सम्पन्न, सेवापरायण और स्वस्थ तथा सर्वहितप्रद व्यक्ति तथा समाजकी संरचनामें ; तद्वत् स्वयंके सर्वविध उत्कर्षमें जीवनका उपयोग और विनियोग करते हुए सुयोग्य पाठकों और संस्थानों तक संस्थानकी पुस्तकोंको पहुँचानेका प्रमोदपूर्ण प्रयास अवश्य करें।

भवदीय

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य महाभागके निज सचिव

स्वामी निर्विकल्पानन्दसरस्वती

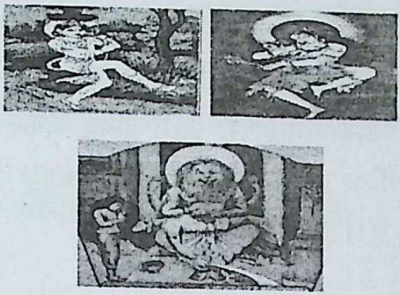

प्रातः ६, मध्याह्न १०, अपराह्न २, सायं ६ एवम् रात्रि १०बजे सर्वहितकी भावनासे निम्नलिखित प्रार्थना प्रत्येक सत्रमें पाँच - पाँच बार व्यक्तिगतरूपसे तथा आध्यात्मिक संस्थानोंके माध्यमसे आस्था तथा उत्साहपूर्वक नित्य कर्त्तव्य है। छान्दोग्योपनिषत् २.१४.१ तथा महाभारत-शान्तिपर्व ३३७.३०के अनुसार प्रतिदिन पाँच बार भगवद्भजनसे सर्वार्थसिद्धि सुनिश्चित है।

प्रार्थना

१.

परोरजः सवितुर्जातवेदो
देवस्य भर्गो मनसेदं जजान।
सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे
हंसं गृध्राणं नृषद्विड्विरामिमः।।
(श्रीमद्भागवत ५.७.१४)

"सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् कर्मफलदायक स्वप्रकाश सर्वेश्वर सूर्यका तेज प्रकृतिसे पर है। उसीने सङ्कल्पद्वारा इस सृष्टिकी संरचना की है। वही अन्तर्यामीरूपसे इसमें प्रविष्ट होकर अपनी चित् – शक्तिद्वारा सर्वविध प्राणियोंकी रक्षा करता है। हम उस बुद्धिप्रवर्तक तेजकी शरण हैं।।"

२.

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदताम्
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी।।

(श्रीमद्भागवत ५. १८.९)

"हे प्रभो ! विश्वका कल्याण हो, दुष्ट दुष्टतासे विनिर्मुक्त होकर प्रमुदित हो ! सब एक – दूसरेका हित चिन्तन करें। हमारा मन शुभमार्गमें प्रवृत्त हो तथा हमारी बुद्धि निष्कामभावसे आप स्वप्रकाश सदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीहरिमें निमग्न हो।।"

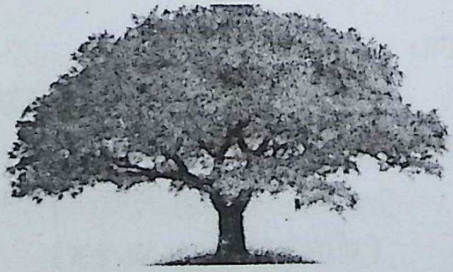

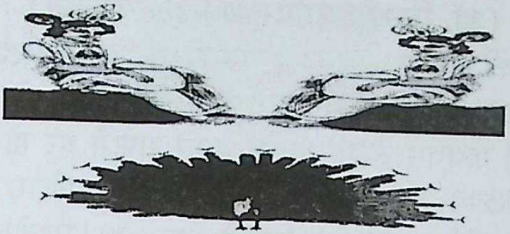

धर्मकी ..... जय हो। अधर्मका .....नाश हो। प्राणियोंमें ...सद्भावना हो। विश्वका .....कल्याण हो। गोमाताकी ...जय हो। गोहत्या ..... बन्द हो।

भारत ....अखण्ड हो।

हर - हर महादेव।

जयघोष

धर्मस्य हि जयो भूयादधर्मस्य पराजयः।
भूयात्प्राणिषु सद्भावो विश्वस्यास्य शिवं सदा।।
गवां वै मन्त्रमूर्त्तीनां पुनर्भूयाज्जयो जयः।
कलङ्को गोवधोद्भूतः प्रभो राष्ट्रादपैतु नः।।
भूयाद्भारतमस्माकमखण्डं धर्ममण्डितम्।
शम्भो हर - हरेत्युच्चैर्महादेवेति गर्जनम्।
सद्धर्मवर्त्मपान्थानामस्माकं राजतां भुवि।।
शुभं भूयाद्धि विश्वस्य प्राणिनः सन्तु निर्भयाः।
धर्मवन्तश्च मोदन्तां ब्रह्मज्योतिः समेधताम्।।

(डॉ. विन्ध्येश्वरीप्रसादमिश्र-विरचित)

धर्मकी जय हो। अधर्मका नाश हो। प्राणियोंमें सद्भावना हो। विश्वका कल्याण हो।। मन्त्रमूर्त्ति गौवोंकी पुनः जय हो , जय हो। हे प्रभो! गोवधसे उद्भूत कलङ्क हमारे राष्ट्रसे दूर हो।। हमारा भारत अखण्ड और धर्ममण्डित हो। श्रीकरपात्रस्वामीद्वारा संस्थापित धर्मसङ्घ वृद्धिको प्राप्त हो।। 'शम्भो ! हर – हर! महादेव!' – यह उच्च स्वरसे किया गया उद्घोष हम सद्धर्ममार्गपर चलनेवाले पथिकोंके भूमण्डलमें उल्लसित हो।। विश्वका कल्याण हो। सद्भावसम्पन्न सब प्राणी निर्भय हों। धर्मात्मा प्रमुदित हों। वेद और ब्राह्मणोंका तेज उद्दीप्त हो तथा ज्योतिस्स्वरूप ब्रह्म वेदज्ञ मनीषियोंके हृदयमें स्फुरित हो।।

परमानन्दसमुद्रोल्लासनिवासैकपूर्णिमाज्योत्स्ने
श्रीमत्करपात्रचरणसरसीरुहपादुके वन्दे।।
संसृतिसागरनिपतल्लोकसमुद्धारकारणीभूते
श्रीमत्करपात्रचरणसरसीरुहपादुके वन्दे।।

(श्रीस्वामीसुखबोधाश्रमजी-विरचित)

"परमानन्दसमुद्रमें उल्लासका सञ्चार करनेवाले पूर्णचन्द्रकी ज्योत्स्नास्वरूपा श्रीमत्करपात्रचरणकमलपादुकाओंकी वन्दना करता हूँ।।"

"जन्ममृत्युकी अनादि और अजस्र परम्परारूप संसृतिसागरमें निपतित प्राणियोंके समुद्धारमें कारणरूपा श्रीमत्करपात्रचरणकमल –पादुकाओंकी वन्दना करता हूँ।।"

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ -स्वस्तिप्रकाशनसंस्थानसे प्रकाशित पुस्तकें

१.शुकसुधा
२.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय १-३ (व्याख्यासहित)
३.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय ३-६ (व्याख्यासहित)
४.नासदीयसूक्तम् (सायणभाष्यानुवादसहित)
५.कुन्तीस्तुतिः (विस्तृत व्याख्यासहित)
६ श्रीराधारस और रसिकशेखर
७ श्रीराधारससुधा और श्रीकृष्णरसवैभव
८.पीठपरिषद् और उसके अन्तर्गत आदित्यवाहिनी और आनन्दवाहिनी
९. सुखमयजीवनका सनातनसिद्धान्त
१०.विश्वशान्तिका सनातनसिद्धान्त
११.स्वस्तिकगणित
१२.सार्वभौमसनातनसिद्धान्त
१३.सारार्थदीपिका

१४.शारीरकस्वाराज्यसिद्धिसारसमाख्या
१५.सनातनधर्मियोंका रसरहस्यमय बहुदेवादिवाद
१६.जीवनज्योति
१७.उल्लास – हास
१८.गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति
१९.अनमोलवचन
२०.नीति और अध्यात्म
२१.नीतिसूक्तम्
२२.आयुर्विज्ञान
२३.अध्यात्मरहस्य
२४.श्रीमद्भगवद्गीतामें योगचतुष्टय
२५.सनातनसन्देश
२६.व्रतस्वरूपविमर्श
२७.बालजागरण
२८.श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्मतत्त्व
२९.श्रीमद्भगवद्गीतामें पुरुषार्थ चतुष्टय
३०.पूर्वाम्नाय –पुरीपीठ – परिचय – प्रकल्प
३१.श्रीजगन्नाथ और उनकी रथयात्रा
३२.व्यूहरचना
३३.अङ्कपदीयम्
३४.गणितदर्शन

३५.पावनसन्देश
३६.दिग्दर्शन
३७.राष्ट्ररक्षा
३८.परमार्थसार
३९.ब्रह्मज्ञानावलीमाला
४०.करुणा, कठोरता और कर्त्तव्यनिष्ठा
41.The Eternal Principles Of Happy Life
४२.श्रीमद्भगवद्गीतामें ज्ञानतत्त्व
४३.क्रान्तिबिन्दु
४४.दिव्यानुभूति (प्रथम भाग)
४५.अवतारमीमांसा
४६.विचित्र सम्वाद
४७.वैदिकार्षगणित
४८.प्रवचनपीयूष
४९.बौद्धागमवृत्तान्त तथा निगमागमसिद्धान्त
५०.नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्
५१.गणितचिन्तामणि
५२.चतुराम्नाय – चतुष्पीठ
53.The Philosophy of Mathematics
54.Swastik - Ganita
55.Nature of Numbers
56..Bhagawan Shree Krisna

५७.श्रीगीतासुधा

५८.श्रीराधासुधा

५९.जगदीश्वर, जीव और जगत्

६०.भागवतसुधा

६१.श्रीजगन्नाथाष्टकम्

६२.श्रीसागर – गङ्गा – आरती

६३.ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय – गोवर्द्धनमठ – पुरीपीठ

६४. भगवान् श्रीकृष्ण (हिन्दी अनुवाद)

६५. वैदिकार्षप्रक्रियाप्रकाश

६६. शून्यैकसिद्धि और द्व्यङ्कपद्धति

६७. सनातनधर्म

68. Sanatan - Dharma

69. Ganita Chintamani

७०. पूर्वाम्नाय – पुरीपीठ – परिचय= प्रदीप

७१. उद्बोधन

७२. सनातनधर्म – प्रश्नोत्तर – मालिका

७३. भावनोपनिषत् (भाष्यानुवादसहित)

७४. श्रीदक्षिणामूर्त्यष्टकम् (भाष्यानुवादसहित)

७५. योगमीमांसा (सूत्रानुवाद तथा व्याख्यासहित)

76..Bhagawan Shree Ram

०७७. शून्यैकसिद्धि और द्वयङ्कपद्धति

(अङ्ग्रेजी अनुवाद)

०७८. द्वयङ्कपद्धतिकी वैदिकार्षविधा

०७९. चित्रालोक

०८०. बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त

०८१. भारत – वैभव

०८२. वेदान्तरससार – सर्वसिद्धान्तसमन्वयप्रकार

०८३.सनातनसिद्धान्त

०८४.द्वयङ्कादिपद्धतिकी वैदिकविधि

०८५.श्रीशिवावतार–भगवत्पाद–आदि शङ्कराचार्य

०८६.हस्तामलकस्तोत्रम्

०८७.तोटकस्तुतिः

०८८.मूकाम्बिकास्तुतिः

०८९.श्रीहरिशङ्करस्तुतिः

०९०.स्वरूपसिद्धिः

०९१.गणितसूत्रम्

०९२.राष्ट्रोत्कर्ष–अभियान

०९३.राजधर्म

०९४.सूत्रगणितम्

०९५.सनातनसन्देश

०९६.गुरुवंश–मठाम्नाय–दिग्दर्शन–सेतु–महानुशासनम्

०९७.धर्मेश्वरसंहिता
०९८.चतुर्व्यूह–परिशीलन
०९९.सनातनवर्णव्यवस्थाकी उपयोगिता
१००.दिव्यानुभूति – जीवनज्योति . द्वितीयभाग
१०१. गीताजयन्ती
१०२.महाकुम्भकी दिशा और दशा
१०३.पूज्य श्रीधर्मसम्राट् के महत्त्वपूर्ण उपदेश
१०४.गीतामान
१०५.त्रिपथगा
१०६.प्रणवप्रकल्प
१०७.ज्योतिष – दर्शन
१०८.नीतिनिधि
१०९.उद्गम
११०.अकारो वै सर्वा वाक्
१११.गीताका सार्वभौम सिद्धान्त
११२.गीतोक्त पुरुषोत्तम
११३.'विचारपीयूष' – सारार्थदिग्दर्शन
११४.शुभसन्देश
११५.श्रीमद्भगवद्गीताकी अद्भुत शैली
११६.प्राथमिक वैदिकार्ष गणित
११७.आक्षेपपरिहार–तथ्यप्रकाश

११८.महाभारत - परिशीलन (महाभारतके ऐतिह्य तथ्यका नीति तथा अध्यात्मगर्भित तात्पर्य)

११९.नीतिसावित्री

१२०.अवताररहस्य

१२१.विकाश- विमर्श

१२२.वेद - विमर्श

१२३.वेदान्त - विज्ञान

१२४. पत्रकारिताकी स्वस्थविधा

१२५.श्रीशङ्कराचार्यरजीवनचरित

१२६.गर्वसे कहें - 'हम हिन्दु हैं'

१२७.सेव्य - सेवक - सेवा - स्वरूपविमर्श

१२८. नास्तिक भी आस्तिक

१२९.अधिकारमीमांसा

१३०.प्राथमिक - वैदिकार्ष - गणित -सूत्रार्थसंहिता

१३१.माध्यमिक - वैदिकार्ष - गणित

१३२.पूर्वाम्नाय - वैदिकार्ष - गणित

श्रीशङ्कराचार्य-गोवर्द्धनमठ - पुरी पीठ